सन्दीप तोमर

नई सुबह

सन् सत्तर के दशक का एक गाँव। मिट्टी से बने मकान, बैलगाड़ी की चर्र-चर्र, कुएँ से रस्सी खींचते औरतों की गुनगुनाहट। ऐसे ही माहौल में जन्मा था वह। कुनबे भर में सबसे छोटा बेटा था वह लेकिन अपने मां-बाप की दूसरे नम्बर की संतान, बड़ी बहन और उसके बाद वह। माँ की गोद में आते ही पूरा परिवार जैसे तृप्त हो गया था। पिता अध्यापक थे, वे भी बेटे के जन्म को लेकर अभिभूत थे।

दादी बार-बार कहतीं– 'हमारा वंश अब मृणाल से चमकेगा।"

पर यह चमक ज़्यादा दिन न टिक सकी। ग्यारह महीनों का था कि तेज़ बुखार ने आकर उसे जकड़ लिया। डॉक्टरों ने कहा– 'ये पोलियो नाम का भयानक रोग है, जिसका इलाज नामुमकिन है।"

इस दुखद खबर से मानो घर की सारी खुशियाँ कुम्हला गईं।

माँ के लिए यह समाचार किसी वज्रपात से कम नहीं था। वह रात-रात भर बच्चे को सीने से चिपकाए बैठी रहतीं। दादी झोली फैलाकर भगवान से प्रार्थना करतीं। पिता चुपचाप दीवार से सिर टिका कर सोचते रहते कि आगे का जीवन कैसे कटेगा।

मृणाल धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था, लेकिन पैरों का सहारा छिन चुका था। दूसरे बच्चे भागते -दौड़ते, पतंग उड़ाते, खेलों में मगन रहते। वह भी खेलना चाहता था, पर जब भी बैसाखी टेककर आगे बढ़ता, बच्चे हँस पड़ते– 'अरे, लँगड़ा आया!"

यह सुनकर उसका दिल छलनी हो जाता। बहन ललिता उसका हाथ पकड़ लेती– 'मत रो मृणाल, तू सबसे अच्छा है। तू तो मेरे लिए हीरो है।"

लेकिन यह हीरो हर रात माँ के तकिये पर सिर रखकर चुपके से आँसू बहाता।

पिता, जो गाँव के प्राथमिक विद्यालय में अध्यापक थे, उन्होंने ठान लिया– 'मृणाल चाहे पैरों से अपाहिज है, लेकिन दिमाग से नहीं। इसे पढ़ाऊँगा, इसे आगे बढ़ाऊँगा।"

पहले दिन जब उन्होंने मृणाल को गोद में उठाकर स्कूल पहुँचाया तो गाँव भर के लोग हैरत से देखने लगे। कई लोगों ने ताने मारे– 'इससे क्या होगा? पढ़कर भी बैसाखियों पर ही तो चलेगा।"

लेकिन पिता का उत्तर साफ़ था– 'शरीर नहीं, दिमाग जीवन का रास्ता बनाता है।"

मृणाल ने भी उसी दिन खुद से निश्चय कर लिया कि वह पिता के विश्वास को टूटने नहीं देगा।

पोलियो का इलाज़ आसान नहीं था। पिता अपनी छोटी तनख्वाह से दवाएँ लाते। कभी पास के गाँव के वैद्य, कभी कस्बे के डॉक्टर, कभी बड़े शहर के बड़े डॉक्टर। इलाज के

लिए लम्बी-लम्बी कतारें, अपनी बारी आने में कई बार शाम हो जाती। स्कूल से छुट्टी करनी पड़ती। सुधार के नाम पर हर जगह यही सुनने को मिलता– "लम्बा इलाज़ है, चमत्कार की उम्मीद मत रखिए।"

एक बार दिल्ली के नारायणा के नामी डॉक्टर के पास ले जाया गया। माँ ने जाते वक़्त बच्चे को माथे से चूमकर कहा– "बेटा, ये हमारी आख़िरी कोशिश है। भगवान चाहे तो तुझे दौड़ने लायक बना देगा।"

पर वहाँ भी निराशा मिली। डॉक्टर ने साफ़ कहा– "ये बच्चा चल नहीं पाएगा। बस सहारा लेकर जीना होगा।"

वह दिन पूरे परिवार पर भारी पड़ा। पिता की आँखें भर आईं। माँ ने आँसू निगल लिए। और मृणाल ने अपने बचपन में ही समझ लिया– "अब उसे उसी हालात में जीना है।"

घर का माहौल उसकी हालत के चलते कभी कड़वा होता तो कभी मीठा। बहन उसकी मदद करतीं, मगर परिवार वाले, अड़ोसी-पडोसी झुंझला जाते– "कब तक इसे उठाएँ-ढोएँ?"

मृणाल चुपचाप सह लेता। उसे लगता कि उसकी मौजूदगी ही जिदगी पर बोझ है। लेकिन हर बार माँ उसके सिर पर हाथ रखकर कहतीं– "तू मेरा प्यारा बेटा है। तू बोझ नहीं, वरदान है।"

माँ के इन शब्दों से मृणाल फिर जी उठता।

माँ ने उसे बचपन में शब्द ज्ञान दिया, गिनती सिखाई, पहाड़े याद कराये। जोड़-घटा, गुणा-भाग सबमें वह तेज हो गया।

स्कूल में शुरू में बच्चे उसे चिढ़ाते। पर जब वह सवालों के सटीक उत्तर देता, तो सबकी बोलती बंद हो जाती। अध्यापक भी उसकी मेहनत देखकर चकित थे।

मृणाल की किताबों से दोस्ती हो गई। हर किताब उसके लिए एक नई खिड़की थी। उसे लगता, "भले ही मेरे पैर कैद हैं, लेकिन मेरा मन इन पन्नों पर उड़ सकता है।"

जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, एक सवाल बार-बार उसके भीतर उठता– "क्या मेरा भी घर-परिवार होगा? क्या मुझे भी कोई लड़की अपना पाएगी?"

कभी-कभी आईने में खुद को देखकर वह बुदबुदाता– "मृणाल, तू अधूरा है... समाज तुझे कैसे स्वीकार करेगा?"

माँ यह पीड़ा समझतीं, लेकिन कुछ कह न पातीं। बस इतना कहतीं– "बेटा, भगवान ने सबके लिए जोड़ी बनाई है।"

निराशा से डूबा मृणाल जब कुछ न सोच पता तो डायरी लिखने बैठ जाता। डायरी में उसने अपना दर्द, संघर्ष और उम्मीदें उकेरीं।

वह लिखता– "लोग कहते हैं मैं अपाहिज हूँ। लेकिन सच्चाई यह है कि अपाहिज मेरा शरीर है, आत्मा नहीं। मेरी आत्मा आज भी दौड़ सकती है, उड़ सकती है।"

धीरे-धीरे यह डायरी उसका साथी बन गई। हर पन्ना उसके मानसिक बोझ को हल्का करता।

गाँव की गलियों में जब वह निकलता तो कुछ लोग तिरस्कार से देखते, कुछ दया से, तो कुछ प्रेरणा से।

मृणाल की पढ़ाई आगे बढ़ती रही। उसने एम.ए. तक की परीक्षा शानदार अंकों से पास की। उसका दिमाग तेज़ था और वह हर शिक्षक की नज़रों में आदर का पात्र बन चुका था। धीरे-धीरे उसने शोधकार्य की ओर कदम बढ़ाए।

पीएच.डी. में दाख़िला मिला तो मृणाल का आत्मविश्वास जैसे एक नई ऊँचाई पर पहुँच गया।

एक लड़की उसकी सहपाठी थी, नाम था संध्या। पढ़ाई में होशियार, सरल स्वभाव और हँसमुख। मृणाल को उसके साथ चर्चा करना अच्छा लगता। दोनों घंटों रिसर्च के विषयों पर बात करते।

धीरे-धीरे मृणाल को लगा कि संध्या ही उसकी जीवनसंगिनी हो सकती है। उसने एक दिन साहस कर अपने मन की बात कह दी।

संध्या कुछ पल चुप रही, फिर धीरे से बोली– "मृणाल, तुम बहुत अच्छे इंसान हो... लेकिन मुझसे ये रिश्ता नहीं होगा। तुम्हारी सबसे बड़ी समस्या तुम्हारे पैर हैं। जीवन का सफ़र आसान नहीं होता। मुझे डर है, मैं वह सब नहीं झेल पाऊँगी।"

यह सुनकर मृणाल के दिल में जैसे किसी ने छुरी उतार दी। वह गहरी मायूसी में डूब गया। पूरी रात उसने अपनी डायरी में लिखा –

"शायद समाज की तरह संध्या ने भी मुझे अपाहिज ही देखा। मेरे भीतर का इंसान, मेरी मेहनत, मेरा प्रेम – सब व्यर्थ हो गया।"

उसने पीएचडी का विषय चुना- "विकलांग जीवन की चुनौतियाँ"। उसकी थीसिस को प्रकाशन के लिए भी चुना गया। उसके बाद कितनी ही जगहों पर उसे मोटिवेशनल स्पीकर के लिए बुलाया जाता, मृणाल बैशाखी की ख़ट-ख़ट के साथ स्टेज पर जाता तो उसके बोलते ही सबके दिमाग में खट-खट होती।

आये दिन उसके प्रेरणात्मक लेख अख़बारों में उसके फोटो के साथ छपते, वह सबको फाइलों में सहेज कर रखता। उसके ही लेख उसे आगे लिखने, आगे बढ़ने की प्रेरणा देते।

एक बार गली के नुक्कड़ पर एक बुजुर्ग ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा– "बेटा, तू सबसे ताकतवर है। हम तो पैरों से चलते हैं, तू दिल से चलता है।"

"हाँ, दादाजी, मैं शरीर से ताकतवर न सही लेकिन इरादों से तो जरुर हूँ, और ये इरादे ही एक दिन मुझे मेरी मंजिल तक ले जायेंगे।"

"जरुर बेटा, बस ये हौसला मत टूटने देना।"

यह सुनकर मृणाल के भीतर एक नई रोशनी जल उठी।

सालों की लिखी डायरी अंततः किताब बनी– "एक जाबांज की डायरी।" जब यह प्रकाशित हुई, तो गाँव से लेकर शहर तक चर्चा होने लगी। लोग उसके लेखन को पढ़कर आँसू बहाते और फिर प्रेरणा लेते।

उसकी किताब पढ़कर एक पाठक ने चिट्ठी लिखी– "मृणाल, आपकी यह किताब हम जैसे पाठकों को प्रेरणा देती है।,

आपने हमें सिखाया कि इंसान अपने पैरों से नहीं, अपने हौसलों से खड़ा होता है।"

मृणाल ने तब जाना कि उसका असली इलाज़ बैसाखियाँ या दवाएँ नहीं थीं – बल्कि उसका आत्मविश्वास और लेखन था।

उसके लेखन और पीएचडी के विषय ने ही उसे एक दिन उसी विभाग में नौकरी दिलाई, जहाँ से उसने पीएचडी किया था।

कुछ महीनों बाद विभाग में एक नई प्रोफेसर आईं – डॉ. अनामिका। उम्र थोड़ी अधिक थी, लेकिन चेहरे पर गहरी संवेदना और आँखों में अपार स्नेह था।

अनामिका मैडम मृणाल की प्रतिभा से प्रभावित थीं। वे उसकी डायरी भी पढ़ चुकी थीं और कई बार कह चुकी थीं– "मृणाल, तुम्हारा संघर्ष ही तुम्हें हम सब से बड़ा बनाता है।"

एक दिन अकेले में उन्होंने कहा– "मृणाल, अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारे साथ जीवन का यह सफ़र बाँट सकती हूँ। तुम्हें सहारे की ज़रूरत नहीं, साथी की ज़रूरत है... और मैं वह बनना चाहती हूँ।"

मृणाल स्तब्ध रह गया। वह जिसे अब तक केवल सहकर्मी मानता था, उसके सामने शादी का प्रस्ताव रख रही थी।

उसकी आँखें भर आईं– "मैडम, मैं बोझ हूँ... आप क्यों यह बोझ उठाना चाहती हैं?"

अनामिका ने मुस्कराते हुए उसका हाथ थाम लिया– "नहीं मृणाल, तुम बोझ नहीं। तुम तो मेरे लिए प्रेरणा हो। तुम्हारे साथ रहकर मैं भी जीवन को नए अर्थ दूँगी।"

यह प्रस्ताव मृणाल के लिए एक नई सुबह था। उसने पहली बार महसूस किया कि अपाहिज शरीर के बावजूद वह प्यार और सम्मान का अधिकारी है।

उस रात डायरी में उसने लिखा – "संध्या ने इंकार किया, क्योंकि उसने मुझमें कमियां देखी। पर अनामिका ने स्वीकार किया, क्योंकि उसने मेरी आत्मा को देखा। यही है जीवन – जो खोता है वही किसी और रूप में लौटकर मिलता है।"

मृणाल की डायरी अब सिर्फ उसका नहीं रही थी। वह समाज का आईना बन चुकी थी। उसके शब्द लाखों दिलों में साहस जगा रहे थे।

बच्चे जब उससे पूछते – "काका, आप दौड़ते क्यों नहीं?" तो वह मुस्कराकर कहता –

"बेटा, मैं रोज़ दौड़ता हूँ... अपनी कलम से।"

मृणाल के जीवन की यात्रा दर्द से शुरू होकर प्रेरणा पर आकर ठहरी।

संध्या का इंकार उसकी अपंगता की टीस था,

अनामिका का प्रस्ताव उसकी आत्मा की विजय।

उसकी डायरी आज भी गवाही देती है कि —

"शरीर की अपूर्णता प्रेम और आत्मा की पूर्णता को रोक नहीं सकती।"